समीक्षा

काशी मरणान्मुक्ति : देह का शैव- संस्करण

प्रभुदयाल मिश्र

किसी पर्वतीय उद्दाम धारा के सामान प्रवाहमान भाषा के वेग में संसार की सम्पूर्ण मलानता को समेटकर संरचना का यदि कोई 'महा'-सागर बने तो वह कृति 'काशी मरणान्मुक्ति' होगी, यह पूर्वानुमान इसकी विधा विशेष (उपन्यास) से लगाना कठिन ही है. मेरे साथ यही हुआ जब मुझे उपन्यास के रूप में इस कृति का नाम बताया गया. किन्तु पुस्तक की भूमिका मात्र को पढ़कर पुस्तक को आद्योपांत पढने का उत्पन्न आवेग बराबर बना रहेगा, यह अनुमान मुझे हो गया और वह प्रायः ठीक था. अध्यात्म के विषयों पर साहित्यिक लेखन अपने आप में एक चुनौती है, विशेषकर यह तब और भी जब लेखक की निष्ठा इन दो भिन्न धाराओं के प्रति समान प्रतिबद्धता की हो. इस तरह मैं इस पुस्तक में वह आश्वासन भी देख रहा हूँ जो इस दिशा में गतिशील रचनाकारों को संभावित स्खलन से अविचलित रह पाने का देता है.

कोई यदि यह प्रश्न करे कि क्या रचनात्मक लेखन की परिकल्पना इस कृति की संरचना में परिपूर्ण होती है तो मैं लेखकद्वय की भूमिका का यह अंश उद्धृत करूँगा-

'सत्य की शाख पर उगा 'महा' रूपी कल्पना का यह पुष्प कब स्वयं सत्य हो उतर आया, यह हमें भी ज्ञात नहीं हुआ.'

अर्थात् यह साहित्य अथवा साधना का कोई अनुष्ठान मात्र न होकर इनकी सिद्धि का पर्याय है। बधाई।

तुलसी ने मानस में किष्किन्धाकाण्ड का आरंभ करते हुए लिखा-

मुकि जन्म महि जान ज्ञान खानि अघ हानि कर

जहं बस संभु भवानि सो काशी सेइय न कस .

शायद यह इस कृति का आदि बीज है. इस शास्त्र सिद्ध महाप्रयोग के प्रतिपादन के लिए लेखक को किसी महानायक की आवश्यकता नहीं थी, यह स्वयं सिद्ध है. किन्तु यह मुक्ति क्या है? जब महामृत्युन्जय मंत्र के द्रष्टा ऋषि वशिष्ठ ऋग्वेद मंडल ७ के सूक्त ५९ के मन्त्र १२ में त्रिनेत्रधारी (शिव।) से कहते हैं – मृत्योर्मुक्षीय मामृतात् – तो वह देह त्याग के बाद का स्वर्ग का वास है या कुछ और है? क्या यह मुक्ति देह में अवस्थित होते हुए भी संभव है? और क्या यह जीवन और मृत्यु की उस श्रृंखला से ही मुक्ति नहीं है जो चाहे जन्म हो या मृत्यु, मात्र बंधन ही तो है। क्या ऐसा अमृत सातत्य देहधारी को भी सुलभ है ?

इस प्रश्न का उत्तर पुस्तक की भूमिका में देने की चेष्टा इस प्रकार की गयी है-

'स्वयं की काया में स्थित हो साधना करता मानव जब स्वयं के सच्चिदानंद स्वरूप आत्मा से परिचित होता है, तो उसी घड़ी देह भान से वह मुक्त हो जाता है. यही मरण भी है एवं काशी मरणान्मुक्ति भी.'

क्या यह साधना महा को 'चिताभस्मालेप से त्रिपुंड लगाने और 'दिक्पट' धारण करने से ही सिद्ध हो रही है अथवा अनाम गुरु का यह आप्त कथन 'पर याद रख मैं तेरा गुरु नहीं' गुरु की अहैतुकी कृपा का का परिणाम है? और प्रश्न यह भी की शिव सायुज्यता की एक चिरंतन प्रतीति का विकल्प आखिर कौनसी साधना हो सकती है?

अग्नि की चिता में 'भस्मांत' नश्वर देह को महा इशावास्योपनिषद् के १८ वें मन्त्र के अनुसार क्या अग्नि से की गयी इस प्रार्थना को फलित देख रहा है – अग्ने नय सुपथा राये अस्मान् । अथवा २०वीं सदी के रहस्यवादी अंग्रेजी कवि येट्स की 'बाईजैंशियम' कविता श्रृंखला की इन पंक्तियों से अभिभूत है –

O sages standing in God's holy fire

As in the gold mosaic of a wall...

(दीवाल पर स्वर्णिम मोजेक से / प्रभु की पवित्र अग्नि में खड़े

ओ ऋषियो । बाहर आओ /एक गोल घेरे में/ मेरी आत्मा के स्वामी गीत गाओ

पशुता से बंधे/ इच्छाओं के दास / अपने आप से बेखबर

इस हृदय को गलाओ/ लेलो मुझे भी अपने साथ

और इसे चिरंतन बनाओ)

-कहना कठिन है. किन्तु जिस चमत्कारी रीति से पुस्तक के ६९ अध्यायों के आरम्भ में 'महाश्मशान मणिकर्णिका पर सहस्राधिक नामावलियों और सामासिक विशेषणों से आविर्भूत भगवान शिव का महानिनाद उद्घोषणा करता है. अनुभूति और अभिव्यक्ति के कुछ ऐसे पैमाने जरूर प्रदान करता है जिनसे इस आकलन की मनोज्ञता पर गुरुतर विचार की आवश्यकता उत्पन्न होती है.

यह विस्मय ही ठहरता है कि एक ही देवता, एक ही साधक और एक ही गुरु पर केंद्रीकृत इस कथानक को इतने विराट आकार में बाँध रखने की क्षमता जितनी शिल्प कुशलता की प्रत्यापेक्षा प्रधान रही होगी, उसका केवल अनुमान ही किया जा सकता है. विशेषकर तब भी जब प्रत्येक अध्याय के आरम्भ में काशीश्वर के नित नूतन उद्घोष की आवश्यकता प्रतिपादित हो और अन्तिम आप्त वाक्य ' पर याद रख, मैं तेरा गुरु नहीं' (पूर्वाग्रह की सीमा तक) दुहराया जाना भी आवश्यक हो।

इतनी सावधान कृति में वर्तनी की ये कुछ त्रुटियाँ (वह भी तृतीय संस्करण में) विचारणीय ही हैं- स्रोत के लिए स्त्रोत (११७), सूत के लिए सुत (१८१), मूसलाधार के लिए मुसलाधार (२२७), आद्याशक्ति के लिए आद्यशक्ति (२३२ और अन्यत्र सर्वत्र), स्रष्टा के लिए सृष्टा (३१८), बद्रिकाश्रम के लिए बद्रीकाश्रम (३४४), भौमी के लिए भेमी (३६९)और परिणित के लिए परिणीत (४३२) .

हिंदी में हजारी प्रसाद द्विवेदी की 'बाण भट्ट की आत्मकथा' या 'चारुचंद्र लेख' के मध्य युग को 'पुनर्नवा' करता यह उपन्यास उन अनेक 'योगी' आत्मकथाओं को रूपाकार देता है जिन्हें कुछ प्रत्यक्ष प्रमाण और कुछ लोग गल्प कहना पसंद करते हैं. लौकिक सन्देश की दृष्टि से जहां यह शैव दर्शन का प्रामाणिक निदर्शन है, वहीं तुलसी के शैव-वैष्णव समन्वयवाद और वर्तमान युग के साईं बाबा के द्वारा विस्तारित कबीर पंथ की आस्था भिति को नयी दृढता प्रदान करता है.

शिव भारतीय मनीषा का विश्व चेतना को प्रदत्त परमोपहार हैं. वे जितने थे और हैं उससे कहीं अधिक अविष्य की सर्वोच्च सत्ता हैं. शिव सृष्टि की नियति, मानव की समिष्टि और स्रष्टा के प्रकटीकरण की प्रक्रिया हैं. इस सार तत्व को सर्जनात्मक मेधा से प्रकट करने वाले लेखक द्वय मनोज ठक्कर और रश्मि छाजेड को मेरी कोटिश: बधाई .

अध्यक्ष महर्षि अगस्त्य वैदिक संस्थान

३५, इडेन गार्डन, चूनाभट्टी, कोलार रोड भोपाल

४६२०१६ . cell -9425079072

Web-www.vishwatm.com